बाइबल टीचर

वर्ष 16 जनवरी 2019 अंक 2

सम्पादकीय

अनुचित मार्ग तथा उचित मार्ग

जब हम इस संसार पर दृष्टि डालते हैं तो हम देखते हैं कि सब लोग किसी न किसी प्रकार से अपने जीवनों को व्यतीत कर रहे हैं अथवा सबने अपने-अपने लिए कोई न कोई ऐसा मार्ग चुन रखा है जिसके अनुसार वे अपने जीवनों को व्यतित कर रहे हैं। अधिकांश लोग अपने जीवनों में अनुचित मार्गो को ही चुनते हैं। अनुचित मार्ग तो बहुत से हैं, परन्तु उचित मार्ग केवल एक है। बाइबल हमें बताती है" सब लोग भटक गये तथा सबने अपना अपना मार्ग लिया.... (यशायाह 53:6)।

आइए, सबसे पहिले हम देखें कि वे अनुचित मार्ग कौन-कौन से हैं जो लोगों ने अपने लिए चुन रखे हैं। परन्तु एक विशेष बात याद रखिये वह यह कि सारे अनुचित मार्ग हमें विनाश अथवा नरक की ओर ही ले जाते हैं।

1. दुष्टों का मार्ग: "क्योंकि यहोवा धर्मियों का मार्ग जानता है, परन्तु दुष्टों का मार्ग नाश हो जाएगा" (भजन 1:6)।

2. टेढ़े मार्ग: भजन संहिता नामक पुस्तक में हमें टेढ़े मार्ग के विषय में भी पता चलता है "परन्तु जो मुड़कर टेढ़े मार्गों में चलते हैं उनको यहोवा अनर्थकारियों के संग निकाल देगा" (भजन 125:5)।

3. चौड़ा मार्ग: इस मार्ग के विषय में बाइबल कहती है "क्योंकि चौड़ा है वह फाटक और चाकल है वह मार्ग जो विनाश को पहुंचाता है; और बहुतेरे हैं जो उससे प्रवेश करते हैं" (मत्ती 7:13)। चौड़ा मार्ग बड़ा ही सरल मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले लोग, सब प्रकार का सांसारिक आनन्द लेते हैं। इस मार्ग में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। अर्थात यह मार्ग एक प्रकार से संसार का मार्ग है। बहुत सारे लोग है जो इस मार्ग पर चलते हैं। परन्तु बाइबल इस मार्ग का परिणाम भी बताती है, वह यह कि यह मार्ग अनन्त काल के विनाश को पहुंचाता है।

इसी प्रकार के और भी अनेक अनुचित मार्गो के विषय में बाइबल बताती है। आज अधिकतर लोग इन मार्गो पर चल रहे हैं और बहुत से लोग इन मार्गो पर चलना ठीक समझते हैं। उनके अनुसार ये मार्ग उनके लिए बिलकुल ठीक है। परन्तु बाइबल इसके विषय में कहती है, "ऐसा भी मार्ग है जो मनुष्य को सीधा देख पड़ता है परन्तु उसके अन्त में मृत्यु ही मिलती है" (नीतिवचन 16:25)।

अब जबकि अनुचित मार्ग है, तो उचित मार्ग का भी होना आवश्यक है। क्योंकि यदि दिन है तो रात भी है। आइए देखें कि वह उचित मार्ग कौन सा है। यह उचित मार्ग है यीशु मसीह। यीशु मसीह ने कहा, "मार्ग और सच्चाई और जीवन में ही हूं, बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंच सकता।" हां उचित मार्ग एक है और केवल एक। स्वर्ग में जाने का केवल एक मार्ग यीशु मसीह है। वह एक सच्चा मार्ग तथा अनन्त जीवन का स्रोत है। हमारा विचवई भी यीशु मसीह ही है, अर्थात परमेश्वर से हमारा मेल कराने वाला (1 तिमुथियुस 2:5)। प्रिय पाठक आज आप अपने विषय में सोचिये कि आप कौन से मार्ग पर हैं? क्या, आप अनुचित मार्ग पर तो नहीं है? यदि हां, तो क्यों नहीं उचित मार्ग को अपनाते? परन्तु उचित मार्ग के विषय में एक बात याद रखिये। यह मार्ग सकरा है, अर्थात इस मार्ग पर चलने वाले को तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, परन्तु इस मार्ग पर चलने वाले के लिए एक बहुत ही बड़ी आशा है और वह यह कि वह अनन्त जीवन का वारिस होगा। सकरे मार्ग के विषय में बाइबल कहती है, "क्योंकि सकेत है, वह फाटक और सकरा है वह मार्ग जो जीवन को पहुंचाता है और थोड़े है जो उसे पाते हैं (मत्ती 7:14)।" अब हमने आप को परमेश्वर के वचन बाइबल से उचित मार्ग बता दिया है। यह आपकी इच्छा है कि आप इस मार्ग को ग्रहण करें या न करें। कोई व्यक्ति यदि कोरबा जा रहा हो, और यदि वह किसी अनुचित मार्ग पर जा रहा है जो कोरबा न पहुंचता हो। और यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसे उचित मार्ग बता दे, तो क्या उसे उस उचित मार्ग पर नहीं चलना चाहिये जो सीधा कोरबा पहुंचता है? जहां तक मेरा विचार है वह उस उचित मार्ग पर जरूरत चलेगा जो उसे सीधा कोरबा पहुंचायेगा। इसी प्रकार स्वर्ग में जाने के लिए बाइबल ने भी आप को उचित मार्ग बता दिया है। क्या आप इस मार्ग पर चलना पसंद नहीं करेंगे? यदि आप इसके विषय में और जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो हमारे यहां से बाइबल के नि:शुल्क पाठों का अध्ययन करें।

क्या परमेश्वर मनुष्यों को दण्ड देने के लिये उन पर दुख भेजता है?

सनी डेविड

अकसर जब लोगों के ऊपर दुख आते हैं, तो वे उन के लिये परमेश्वर को दोषी ठहराते हैं। वे कहते हैं, "परमेश्वर ने मेरे साथ ऐसा क्यों किया है?" या, "मैंने परमेश्वर का क्या बिगाड़ा था?" "जबकि अन्य लोग फल-फूल रहे हैं, तो विपत्तियां मेरे ऊपर ही क्यों आ रही हैं?" अभी हाल ही मैं एक परिवार से मिला था, जिनके घर में एक कुछ ही महीने के बच्चे की मौत हो गई थी। उनका कहना था, कि आप तो हमें यह सिखाते हैं कि हम परमेश्वर से डरें

और उसकी हर एक आज्ञा का पालन करें। पर हम ऐसा क्यों करें? उसने हमारे साथ क्या किया है? हमने उसका क्या बिगाड़ा था? फिर उसने हमारे छोटे से बच्चे को क्यों उठा लिया? हम अकसर यह भी सुनते हैं, कि ईश्वर की मरजी के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। यानि आकाश के नीचे जो कुछ भी प्रतिदिन होता है, वह सब कुछ परमेश्वर की इच्छा से ही होता है। अब अगर यह कथन सच है, तो फिर हमें यह मानना पड़ेगा कि रोजाना जितनी भी हत्याएं दुनियां में होती हैं; जितने भी लड़ाई-झगड़े दुनिया में होते हैं; जो लोग नशा करते हैं, यानि जो कुछ भी बुरा इस धरती पर होता है वह सब ईश्वर की मर्जी से ही होता है। किन्तु क्या यह सच है?

वास्तव में लोग इस सच्चाई को नहीं देखते, कि परमेश्वर ने इस संसार को बनाया तो है, पर उसने संसार के लिये नियमों को भी बनाया है। और जब हम उन नियमों का उल्लंघन करते हैं चाहे हम ऐसा स्वयं करें या कोई और करे, तो उसका परिणाम हमें भुगतान ही पड़ता है। या जब हम किसी ऐसी जगह पर होते है जहां किसी कारणवश कोई दुर्घटना हो जाती है, तो उसका असर हम पर भी पड़ सकता है। क्योंकि हम वहां है। अब मिसाल की सूरत पर, कोई अपना हाथ आग में डाल दे, तो हाथ तो जलेगा ही। पर क्या यह परमेश्वर ने किया है? मान लीजिए आप एक गाड़ी में सफर कर रहे हैं और दुर्घटना हो जाती है, और बहुत से लोग उस में मर जाते हैं और जख्मी हो जाते हैं। अब दुर्घटना का कोई भी कारण हो सकता है। जैसे मान लें गाड़ी में कोई खराबी हो जाती है; या ड्राइवर गाड़ी का नियंत्रण खो बैठता है; या हो सकता है ड्राइवर ने नशा कर रखा हो। अब इसमें परमेश्वर का नाम कहां से आ जाता है।

आरंभ में जब परमेश्वर ने जगत को बनाया था, तो परमेश्वर ने सब कुछ सही और अच्छा बनाया था। उसने जब मनुष्य को बनाया था, तो बिल्कुल पवित्र बनाया था। उसमें न कोई पाप था और न कोई बुराई थी। लेकिन परमेश्वर ने मनुष्य को अपने ही समान एक इच्छा के साथ बनाया था। अर्थात् परमेश्वर ने मनुष्य के भीतर चुनाव करने की क्षमता दी थी। परमेश्वर ने मनुष्य को ऐसे नहीं बनाया था, जेसे आज बाजार में बहुत से खिलौने बिकते हैं, जिनमें चाभी भर दो तो वे आपकी इच्छा से बोलेंगे, और चलेंगे और बंद हो जाएंगे। परमेश्वर ने इंसान को एक मशीन की तरह नहीं बनाया था, पर उसको ऐसे बनाया था, कि वह स्वयं अपनी ही इच्छा से चुनाव कर सकता था। परमेश्वर ने नियम बनाए है। मनुष्य को बताया है, कि अच्छा क्या है, और बुरा क्या है। पर इंसान को किस रास्ते पर चलना है, कौन सा काम करना है, कैसा जीवन व्यतीत करना है, यह चुनाव स्वयं मनुष्य को ही करना है। जैसे कि आरंभ में आदम और हव्वा ने किया था। परमेश्वर ने उन्हें बता दिया था, कि सही क्या है और गलत क्या है। पर जब उन्होंने गलत किया था, तो उसने उनका हाथ नहीं रोका था। क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें स्वयं अपना निश्चय करने की शक्ति दी थी।

परमेश्वर ने मनुष्य को पशुओं के समान नहीं बनाया है। पर उसने मनुष्य को बुद्धि, और मन, और सोचने-समझने की शक्ति और विवेक के साथ उत्पन्न किया है। मनुष्य जानता है जब वह कोई बुरा काम करता है, और वह समझता है जब वह कोई अच्छा काम करता है। क्या लड़ाई-झगड़ा करना अच्छी बात है? हम जानते हैं कि यह अच्छी

बात नहीं है। पर फिर भी लोग लड़ते-झगड़ते है। गाली-गलौच करना, चोरी करना, दूसरों से बैर रखना, स्वयं अपने ही हित की चिंता करना, किसी को धोखा देना, मार-पीट करना, झूठी गवाही देकर किसी को फसाना, क्या ये सब अच्छी बाते हैं? नहीं। हम सब जानते हैं कि ये बातें बुरी हैं। फिर भी लोग अकसर ऐसी-ऐसी बातें करते हैं। कौन कहेगा कि शराब पीना अच्छी बात है? शराब पीने से सैकड़ों और हजारों लोग रोजाना मर जाते हैं। हजारों दुर्घटनाएं रोज होती है। घर और परिवार बर्वाद हो जाते हैं। बच्चे यतीम हो जाते हैं। पर करोड़ों रुपए की शराब रोजाना बिकती है। जो लोग तम्बाकू का सेवन करते है, सिगरेट और बीड़ी पीते हैं, उन्हें मालूम है, कि इस से कैंसर होता है, फेफड़ों की और दिल की बीमारी होती है, पैसा बर्वाद होता है। पर फिर भी लोग तम्बाकू खाते और पीते हैं। अब यह बताइये, कि ऐसे-ऐसे सभी कामों से रोजाना हजारों लोग मरते हैं, घर बरबाद होते हैं, समाज बरबाद होता है, लोगों के जीवन नष्ट होते हैं। इसका जिम्मेदार कौन है? क्या परमेश्वर चाहता है कि लोग ऐसा करें? परमेश्वर की बाइबल शिक्षा देकर कहती है, कि "शरीर के काम तो प्रकट हैं, अर्थात व्याभिचार, गंदे काम, लुचपन, मूर्तिपूजा, टोना, बैर, झगड़ा, ईर्ष्या, क्रोध, विरोध, फूट, विधर्म, डाह, मतवालापन, लीलाक्रीड़ा और इन्हीं के जैसे और-और काम हैं....... किन्तु ऐसे-ऐसे काम करने वाले परमेश्वर के राज्य के वारिस न होंगे" (गलतियों 5:19-21)

ऐसे ही, हमें यह भी समझने की आवश्यकता है, कि हम संसार में अकेले ही नहीं है। इस संसार में करोड़ों और भी लोग है, जो हर तरह के काम करते हैं। और उन के कामों के प्रभाव से हम बच नहीं सकते, चाहे वे अच्छे काम हो या बुरे काम हो। हम में से किसने रेलगाड़ी, या मोटर या हवाई जहाज को बनाया है? लेकिन फिर भी हम उनमें सफर करके उनका फायदा उठाते है। इसी तरह से बिजली, टेलीफोन, रेडियो, टेलिविजन, कम्प्यूटर और इसी तरह के अन्य और बहुत से उपकरण हैं, जिनका इस्तेमाल हम रोजाना करते है। उन सब को बनाया तो किसी और ने था, पर हम सब इन चीजों से लाभ उठाते हैं। ऐसे ही, कुछ अन्य बातें भी हैं, जिनके जिम्मेदार होते तो कोई और लोग हैं, पर उनका नुकसान हमें भी उठाना पड़ता है। जैसे कि कुछ लोग नकली दवाईयां बनाते हैं, और नकली खाने-पीने की चीज़ें बनाते हैं। अब इससे फायदा तो उनको ही होता है, क्योंकि ऐसे-ऐसे काम करके वे लाखों और करोड़ों रुपए कमाते हैं, पर आम लोगों को उससे नुकसान उठाना पड़ता है। लोगों की जाने चली जाती है। और जब ऐसा होता है, तो लोग परमेश्वर को जिम्मेदार ठहराकर कहते है, कि परमेश्वर ने हमारे साथ ऐसा क्यों किया? दूसरी ओर, जब ऐसे-ऐसे लोगों को हम फलते-फूलते देखते हैं, जो गलत कामों को करके अमीर बन जाते हैं, तो इसके लिये भी लोग परमेश्वर को ही जिम्मेदार ठहराकर कहते हैं, कि ईश्वर ऐसे-ऐसे लोगों को क्यों अपार धन दे रहा है? पर बात वास्तव में यह है, कि न तो परमेश्वर उन्हें दुख दे रहा है जो दुख उठा रहे है; और न उन्हें सुख दे रहा है, जो सुख पा रहे है। पर सच्चाई यह है, कि हम सब एक ऐसे मानव-समाज के हिस्से है, जिसमें हम सब एक दूसरे के ऊपर निर्भर और इस कारण अच्छाई और बुराई दोनों का सामना हमें करना पड़ता है। इसी तरह से दुर्घटनाएं भी है।

जैसे कि कोई घर पुराना या कमजोर होने के कारण गिर सकता है। आंधी, तूफान, बाढ़ और भूकम्प के कारण नुकसान हो सकाता है। ये सब प्राकृतिक कारणों से होता है। परमेश्वर विशेष रूप से इन सब को नहीं भेजता है। ऐसे ही तरह-तरह की बीमारियां है। सब तरह के कीटाणु हैं, वाइरस है, जहरीली गैस है, प्रदूषण है, गन्दगी है, जिनके कारण रोग और महामारी फैलते हैं। परमेश्वर इन सब को नहीं भेजता।

सो इन सब बातों से हम क्या सीखते हैं? या हमें क्या सीखना चाहिए? हम सब को आज यह सीखने की आवश्यकता है, कि परमेश्वर में कोई बुराई नहीं है। वह जगत में प्रत्येक से प्रेम करता है। वह किसी को दुख नहीं देता। वह किसी को अमीर या गरीब पैदा नहीं करता। वह किसी को आपहिज या बीमार नहीं करता। पर हम सब एक विशाल मानव समाज के हिस्से हैं। जिसमें सभी तरह के लोग हैं, विभिन्न प्रकार की परिस्थितियाां है, हमारे अपने सही और गलत चुनाव है, प्राकृतिक नियम है और उन्हीं के फलस्वरूप हम वह सब पाते हैं जो हमें मिलता है। परमेश्वर का इसमें कोई हाथ नहीं है।

हां, यह सच है, कि परमेश्वर ने हम सब को बनाया है। और वह चाहता है, कि हम सब एक अच्छा और नेक जीवन व्यतीत करें। क्योंकि एक दिन वह हम सब का न्याय करेगा। पर उस के न्याय के आधार न तो मनुष्यों की गरीबी या अमीरी होगी; और न ही इंसानों के सुख और दुख। पर उसका न्याय केवल इस बात पर आधारित होगा, कि क्या हमने उसकी इच्छानुसार चलकर उसकी आज्ञाओं को मानकर पृथ्वी पर जीवन व्यतीत किया था या नहीं। एक तो, परमेश्वर ने अपनी इच्छा को अपनी पुस्तक बाइबल में लिखवाकर हम को दिया है। और दूसरे, उसने प्रभु यीशु मसीह को स्वर्ग से हमारे लिये धरती पर भेजा था। जिसने एक आदर्शपूर्ण जीवन हमारे लिये व्यतीत किया था; और सारे जगत के सब लोगों के पापों का प्रायश्चित करने को अपना बलिदान दिया था। आज परमेश्वर की इच्छा यह है, कि पृथ्वी पर प्रत्येक व्यक्ति इस बात को अनुभव करे कि वह पाप में है और उसे अपने पापों से मुक्ति पाने की आवश्यकता है। फिर, वह परमेश्वर के पुत्र यीशु मसीह में विश्वास लाए कि वह जगत के पापों का प्रायश्चित है। और प्रत्येक बुराई से अपना मन फिराकर अपने पापों की क्षमा के लिये जल में बपतिस्मा ले, जो इस बात को दर्शाता है कि वह व्यक्ति अपने पुराने जीवन के लिये मर चुका है, और गाड़ा जा चुका है और अब परमेश्वर की इच्छानुसार एक नया जीवन व्यतीत करने के लिये जी भी उठा है।

प्रभु यीशु ने सिखाया था, कि यदि मनुष्य सारे जगत को भी प्राप्त कर ले, अर्थात संसार का सारा सुख बटोर ले, पर अंत में अपनी आत्मा को ही नरक में गवां दे, तो क्या लाभ होगा? (मत्ती 16:26)।

इसलिये, सबसे बड़ा प्रश्न हम सबके सामने आज यही है, कि क्या हम आत्मिक दृष्टिकोण से सुखी और सुरक्षित हैं? क्योंकि यदि हम ने परमेश्वर की इच्छा को मानकर अपनी आत्मा को पाप के दण्ड से बचा लिया है, तो हम जानते हैं कि हम परमेश्वर की इच्छानुसार उसके स्वर्ग में अनन्त जीवन के सुख को प्राप्त करने के लिये तैयार हैं।

हम यीशु में क्यों विश्वास करते हैं?

जे. सी. चोट

हमारे इस पाठ का विषय है कि हम यीशु में क्यों विश्वास करते हैं? यदि कोई व्यक्ति किसी बात में विश्वास करता है तो इसका कोई कारण होता है। हम मसीही लोग यह क्यों विश्वास करते हैं कि यीशु हमारा प्रभु है?

सबसे पहिली बात यह है कि यीशु कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। वह झूठा प्रचारक भी नहीं था। वह आरंभ से परमेश्वर के साथ था। (उत्पत्ति 1:1) सब कुछ उसी के द्वारा रचा गया (यूहन्ना 1:1-3)। उसे परमेश्वर का पुत्र कहा गया है। प्रेरितों 17 अध्याय के 39 पद में उसे परमेश्वरत्व का एक भाग बताया गया है। पिता, पुत्र और पवित्रआत्मा में उसे पुत्र कहा गया है। रोमियों 1:20 तथा कुलु. 2:9 में तीन व्यक्तित्व है जैसे परमेश्वर पिता, यीशु पुत्र तथा पवित्रात्मा जिसने वचन दिया है। (इफि. 4:1-6)। फिर से हम देखते हैं कि परमेश्वर एक है परन्तु उसे ईश्वरतत्व करके दिखाया गया है अर्थात पिता, पुत्र और पवित्रात्मा 1 तीमु. 2:5; यूहन्ना 17 - कुछ लोगों को यह बात समझ में नहीं आती या उनके लिये इसको समझना बड़ा कठिन है। कई लोग इसे इस तरह से कहते है कि यीशु परमेश्वर है, पवित्रआत्मा परमेश्वर है परन्तु बार-बार बाइबल बताती है कि वह अलग व्यक्तित्व है और यह एक है। परमेश्वर का वचन हमें बताता है कि यह तीनों एक हैं। (मत्ती 17:5, यूहन्ना 16:13)। कई लोग कहते हैं कि यदि यीशु परमेश्वर का पुत्र है इसका अर्थ यह हुआ कि वह विवाहित है। इसका अर्थ यह हुआ कि वे अपने इंसानी दिमाग से ऐसा सोच रहे है। यीशु आरंभ से परमेश्वर के साथ था और हम पढ़ते है कि उसने अपने को इतना दीन किया कि वह स्त्री के द्वारा पवित्रात्मा से जन्म लेकर एक मनुष्य बना और पृथ्वी पर आया। उसने अपना बलिदान दिया ताकि मनुष्य को पाप से बचा सके। यह आवश्यक नहीं है कि हम परमेश्वरत्व को भली-भांति समझ सकें। हम विश्वास के द्वारा यह जानते हैं कि एक परमेश्वर है तथा उसने अपने पुत्र को अपनी शक्ति द्वारा इस संसार में भेजा।

अब हम यह देखना चाहेगें कि किन कारणों से हम यीशु पर विश्वास करते हैं? क्यों वह परमेश्वर का पुत्र है, किस प्रकार से वह मृतकों में से जी उठा और पिता परमेश्वर के पास, वापस चला गया। हम देखते हैं, कि वह एक भविष्यदूक्ता से भी अधिक है। वह परमेश्वर का इतना आज्ञाकारी था कि क्रूस पर मरने के लिये तैयार था। ताकि मनुष्य को उद्धार दे सके। हम यीशु में इसलिये विश्वास करते हैं क्योंकि वह आरंभ से हैं। यूहन्ना हमें बताता है, "आदि में वचन था और वचन परमेश्वर के साथ था, और वचन परमेश्वर था। यही आदि में परमेश्वर के साथ था। सब कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ, और जो कुछ उत्पन्न हुआ है, उसमें से कोई भी वस्तु उसके बिना उत्पन्न न हुई।" (यूहन्ना 1:3)।

हम यीशु में इसलिये विश्वास करते हैं क्योंकि सब कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न

हुआ है। यीशु सृष्टि की रचना में शामिल था। (उत्पत्ति 1:1)। उत्पत्ति1:26, 27 के द्वारा हमें पता चलता है कि सृष्टि की रचना के समय यीशु परमेश्वर के साथ था। यूहन्ना 1:3 में जब हम पढ़ते हैं कि सब उसके द्वारा उत्पन्न हुआ हैं तो यह सोचने पर मजबूर हो जाते है कि यह सब किसी ने तो बनाया है। सब परमेश्वर तथा यीशु के द्वारा आया है। हम फिर भी यह सब देखते हुए यीशु में विश्वास नहीं करते। प्रेरित पौलुस कहता है, ''जिस में हमें छुटकारा अर्थात पापों की क्षमा प्राप्त होती है। वह तो अदृश्य परमेश्वर का प्रतिरूप और सारी सृष्टि में फैला है। क्योंकि उसी में सारी वस्तुओं की सृष्टि हुई स्वर्ग की हो अथवा पृक्थी की, देखी या अनदेखी क्या सिंहासन, क्या प्रभुताएं, क्या प्रधानताएं, क्या अधिकार सारी वस्तुएं उसी के द्वारा और उसी के लिये सृजी गई है और वही सब वस्तुओं में प्रथम है, और सब वस्तुएं उसी में स्थिर रहती है (कुल. 1:15-17)।

यीशु के विषय में कई भविष्यवाणियां की गई थी और हम देखते हैं कि वे सब पूरी हुई और यही एक कारण और है कि हम यीशु में विश्वास करते हैं। जब मनुष्य ने अदन की बाटिका में पाप किया तब मनुष्य परमेश्वर से दूर हो गया था और तब भविष्यवाणी हुई थी कि यीशु मनुष्य का उद्धारकर्त्ता बनकर संसार में आयेगा। (उत्पत्ति 3:15)। भविष्यदूक्ताओं ने अक्सर यह बात कही थी कि एक मसायाह या उद्धारकर्त्ता आयेगा। उसके विषय में उन्होंने बहुत सी बातें कहीं थी, कि उसका जन्म कब होगा, उसकी जान को खतरा होगा, और किस प्रकार से वह क्रूस पर मारा जायेगा। और फिर बाद में स्वर्ग में अपने पिता परमेश्वर के पास चला जायेगा।

हम यीशु में इसलिये भी विश्वास करते हैं क्योंकि उसका जन्म बड़े ही अद्धभुत तरीके से हुआ था। (यशायह 7:14)। यीशु के विषय में कहा गया था कि पवित्रआत्मा की सामर्थ द्वारा उसका जन्म एक कुंवारी के द्वारा हुआ था। और वह लोगों को उनके पापों से बचायेगा (मत्ती 18:25) अर्थात् प्रभु यीशु स्वर्ग से आया था। यीशु ने इस संसार में बहुत से आश्चर्यक्रम किये। वह पानी पर चला, बीमारों को चंगा किया। अंधों को रोशनी दी। (यूहन्ना 20, 30, 31)।

यीशु में हम विश्वास करते हैं क्योंकि प्रेरितों ने, उसके दोस्तों ने और शत्रुओं ने उसे परमेश्वर का पुत्र स्वीकार कर लिया था। परमेश्वर ने कहा था कि, ''यह मेरा प्रिय पुत्र है जिससे मैं अत्यंत प्रसन्न हूं।'' इसकी सुनो। (मत्ती 17:5)। मत्ती 16:18 में भी पतरस ने यह अंगीकार किया था कि वह जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है।

यीशु इस पृथ्वी पर रहा और उसने कोई पाप नहीं किया। पतरस कहता है कि उसमें कोई पाप नहीं था। (1 पतरस 2:22) पौलुस कहता है, ''जब हम पापी ही थे यीशु ने हमारे लिये अपने प्राणों को दिया'' (रोमियों 5:8)। वह कब्र में से जी उठा ताकि हमें अनन्त जीवन दे सके (1 कुरि. 15:1-4)।

क्या आप यीशु में विश्वास करते हैं? क्या आप विश्वास करते हैं कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है? यीशु ने कहा था कि यदि तुम परमेश्वर पर विश्वास करते हो तो मुझ में भी विश्वास करो। (यूहन्ना 14:1)। यीशु ने कहा था, यदि तुम मनुष्यों के सामने मुझे मान लोगे तो मैं अपने पिता के सामने तुम्हें मान लूंगा (मत्ती

10:32–33)। हमारा उद्धार यीशु मसीह में विश्वास पर अधाारित है। यदि आप यीशु में विश्वास नहीं करते तो आज यह दिन कि है कि आप उसमें विश्वास लाकर बपतिस्मा लें। (मरकुस 16:16; प्रेरितों 2:38)।

संसार में से (2 कुरिन्थियों 12:1–12)

जेम्स थॉम्पसन

"...अपनी निर्बलताओं को छोड़, अपने विषय में घमण्ड न करूंगा" (12:5)।

एक प्रसिद्ध विचार के अनुसार वास्तविक मसीही की पहचान अनुभव का वह गुण है जिसे "इस संसार में से" कहा जा सकता है। ऐसा अनुभव आमतौर पर प्रामाणिक शिष्यता के चिन्ह् के रूप में नापा जाता, विश्लेषण किया जाता और प्रस्तुत किया जाता है। कई बार वे लोग जो इस बात से जिसे "इस संसार में से" कहा जाता है अपने मसीही जीवन की सच्चाई को दिखाने के लिए एक-दूसरे के साथ अपने अनुभवों की तुलना करते हैं। कई दायरों में मसीही जीवन की परख भावनात्मक उत्तेजना, सामर्थ की भावनाएं और उस जोश की अधिकता होती है जिससे लोग "चलते हैं।" एक परख जो आराधना के हर काल के लिए लागू होती है। वह यह बन जाती है कि क्या यह "इस संसार की" थी?

हमारे विश्वास की वास्तविकता की यह विशेष परख हमें अपने प्रश्नों के लिए नये नियम की उपयोगिता बने रहने को स्मरण दिलाती है, क्योंकि ऐसे ही प्रश्न कुरिन्थियों द्वारा खड़े किए जा रहे थे। जब पौलुस ने 2 कुरिन्थियों में लिखा तो एक मसीही (10:7) के रूप में और मसीह के सेवक के रूप में (11:23) उसकी सच्चाई पर संदेह किया जा रहा था। कुछ लोगों ने यह देखकर कि वह कितना अप्रभावशाली है, "प्रमाण" मांगा कि सचमुच मसीह उससे बात कर रहा है (13:3)। उन्होंने यह मान लिया कि ऐसा अप्रभावशाली वक्ता सम्भ्यवता आत्मिक आदमी नहीं हो सकता। यदि उसे आत्मा दिया गया था तो उनके विचार से "असली प्रेरित का कोई चिन्ह्" (तुलना 12:11, 12) उसकी सच्चाई को दिखाने के लिए स्पष्ट होना था क्योंकि मसीह के सेवक के रूप में पौलुस की निष्कपटता पर स्पष्टतया उन लोगों द्वारा सवाल उठाया गया जिन्हें "बड़े प्रेरितों" (12:11) कहा जाता था। किसी ने सम्भवतया यह इंकार कर दिया होगा कि "असली प्रेरित के चिन्ह्" पौलुस में मिलते हैं, क्योंकि उसके विरोधी पौलुस के साथ "अपने आप की तुलना" करने और "अपने आपको मिलाने" पर संतुष्ट थे (तुलना 10:12)। पौलुस का यह जोर की उसने "असली प्रेरित के चिन्ह्" दिखाए थे सुझाव देता है कि वह बचाव की मुद्रा में है। अन्यों ने अपने ही आश्चर्यकर्मों और चिन्ह्रों पर घमण्ड किया है और अपने अनुभवों को पौलुस के अनुभवों से मिलाया है। उनके कई अनुभव "इस संसार के" थे। 5:13 में पौलुस का शब्द "हम बेसुध" मूलतया "बेखबर" है। कइयों के लिए प्रमाणिकता की परख बेखबरी में और भावनात्मक

अनुभव थी। इन "चिन्हों" से प्रमाणित होता था कि किसी को परमेश्वर का आत्मा मिला है।

तीसरे स्वर्ग तक उठा लिया गया (12:1-6)

जो लोग मस्ती और भावनात्मक अनुभव के अधार पर दूसरों के आत्मिक होने की सच्चाई को परखते थे हमारे समय में भी उनके प्रतिनिधि थे। वे हमें पूछने पर विवश करते हैं। मसीही जीवन में "इस संसार में" अनुभव की क्या भूमिका है? क्या हम यह मान लें कि यह हमारी निष्कपटता की परख है? या हम हर प्रकार के भावनात्मक अनुभव पर संदेह करके यह निष्कर्ष निकालें कि मसीही जीवन में इसकी कोई जगह नहीं है? पौलुस का उत्तर हमें इन प्रश्नों का उत्तर देने में सहायता करता है।

12:1-6 की सामग्री पौलुस की लिखी किसी भी अन्य बात जैसी नहीं है। वह उन अनुभवों की बात लिखता है जो उसने और कहीं नहीं बताए। इस असामान्य सामग्री को देने का कारण स्पष्ट है: पौलुस इन अनुभवों की चर्चा केवल इसलिए करता है क्योंकि दूसरों ने उसे उनकी चर्चा करने को विवश किया है। वह जानता है कि ऐसी बातें करना घमण्ड करने जैसा है और "इसका कोई लाभ नहीं" (12:1)। वह कहता है, "तुम ही ने मुझसे यह बरबस करवाया" (12:11)। ऐसा घमण्ड करना मूर्खता है (11:16, 17, 21), परन्तु इस परिस्थिति में आवश्यक है (12:1)। यदि औरों ने इस विषय पर जोर न दिया होता तो पौलुस अपने जीवन के इन अंतरंग विवरणों को कभी न बताता। वह "प्रभु के दर्शनों और प्रकाशनों" का विषय केवल इसलिए उठाता है क्योंकि उसे अपने आलोचकों के घमण्ड का उत्तर घमण्ड से देना आवश्यक है।

12:1-10 पौलुस के पत्रों में विलक्षण होने के कारण हम में से कई लोग यह जानने पर चकित होते हैं कि पौलुस ने उन अनुभवों को जो "इस संसार के" है नकारा नहीं। "प्रभु के दर्शन और प्रकाशन" तो थे (12:1)। यह हवाला हमें उसके मन परिवर्तन के समय का स्वाभाविक ही कराता है जिसका वर्णन दर्शन (प्रेरितों 26:19) और प्रकाशन (गलातियों 1:12) दोनों में किया गया है। परन्तु पौलुस के असाधारण अनुभव उसे मन परिवर्तन के साथ खत्म नहीं हो गए। "प्रकाशनों की बहुतायत" थी (12:7), जिनमें से कुछ प्रेरितों के काम में लिखी गई है (9:12; 16:19; 18:9-11)। यह विषय हमें 1 कुरिन्थियों 14:18 का स्मरण दिलाता है, जहाँ पौलुस कहता है, "मैं अपने परमेश्वर का धन्यवाद करता हूं कि मैं तुम सबसे अधिक अन्य भाषाओं में बोलता हूं।" पौलुस को मालूम था कि इसका अर्थ मसीह के लिए "बेसुध" होना है (5:13)। उसके आलोचकों का कोई इतना गहरा आत्मिक अनुभव नहीं था जिसका पौलुस को पता न हो।

यह कहना गलत नहीं है कि पौलुस के लिए ऐसे पल महत्वपूर्ण थे। वास्तव में वह दर्शन की एक विशेष घटना को स्मरण करता है जो न भूलने वाली है। यह असाधारण पल 2 कुरिन्थियों के लिखे जाने से चौदह वर्ष पूर्व घटा था (लगभग 42 ईस्वी)। पौलुस एक अनुभव की बात करता है जो बिल्कुल "इस संसार से बाहर" था। वह "तीसरे स्वर्ग तक उठा लिया गया" और "स्वर्गलोक पर उठा लिया गया" (12:2, 4)। अनुभव हमें हनोक (उत्पत्ति 5:24), एलिय्याह (2 राजाओं 2:11) की कहानियां

स्मरण दिलाता है। "उठा लिया गया" के लिए यूनानी शब्द संकेत देता है कि इस पूरे अनुभव का आरंभ पौलुस द्वारा नहीं किया गया था। ऐसे निराले अनुभव उसके लिए अद्भुत थे। 2 कुरिन्थियों में वह उनकी "बहुतायत" की बात करता है। यह किसी विशेष तकनीक या तैयारी या सुझाव के पौलुस की अपनी किसी सामर्थ के द्वारा नहीं लाया गया था। इस शब्द का अक्षरश: अर्थ "पकड़ा गया" या "ले जाया गया" है। पौलुस को इसमें कोई संदेह नहीं था कि "इस संसार में से" इस अनुभव को देने के लिए परमेश्वर ने कार्य किया था।

पौलुस को जो बात सबसे अधिक याद थी वह यह थी कि उसने "ऐसी बातें सुनी जो कहने की नहीं; और जिन का मुंह पर लाना मनुष्य को उचित नहीं" (12:4)। जो कुछ पौलुस ने सुना उसे बता पाना मनुष्य की क्षमता से बाहर था। पौलुस के शब्द हमें "स्वर्गदूतों की बोलियां" (1 कुरिन्थियों 13:1) और 1 कुरिन्थियों 12-14 के आत्मिक दोनों के उसके पहले हवालों का स्मरण दिलाते है। उसने उन चीजों की भी बात की जो "बातें आंखों ने नहीं देखी और कान ने नहीं सुनी" (1 कुरिन्थियों 2:9)। यह बातें परमेश्वर के आत्मा के द्वारा प्रकट की गई है, जो हमें परमेश्वर के मन को जानने की अनुमति देता है (1 कुरिन्थियों 2:11, 12)। कुछ बातें मनुष्य के कहने से बाहर थी। पौलुस को कई दर्शनों और प्रकाशनों का अनुभव था परन्तु उनमें से एक विशेष तौर पर न भूलने वाला था। पौलुस की मसीही सेवकाई में अकथनीय आत्मिक बेसुधी के पल भी थे। वह भी उतना ही दावा कर सकता था जितना उसके आलोचक कर सकते थे।

स्वभावित है कि हम एक ऐसे व्यक्ति से जिसने ऐसी अद्भुत कहानी का अनुभव किया हो उसे इसे और विस्तार से बताने की उम्मीद करेंगे। उस पूरे अनुभव के विशलेषण के लिए एक पूरी पुस्तक समर्पित किया जाना हमारे लिए आश्चर्यजनक नहीं होगा। कैसा लगा होगा? कितनी देर तक रहा? परन्तु पौलुस के विवरण में विस्तार से बताए जाने का आकर्षण नहीं है। वह पीछे मुड़कर अपनी शारीरिक उत्तेजनाओं को याद नहीं करता। ("न जाने देह सहित, न जाने देह रहित)।" उसे तो केवल इतना मालूम है कि उसे परमेश्वर द्वारा "उठा लिया गया" था। पौलुस अपनी आत्मिक प्राप्तियों पर घमण्ड करने के लिए चुपचाप था। जैसे उसने अपने बपतिस्मों का हिसाब नहीं रखा था (1 कुरिन्थियों 1:16) वैसे ही उसने अपने दर्शनों और प्रकाशनों का हिसाब नहीं रखा था।

पौलुस अपनी आत्मिक प्राप्तियों पर घमण्ड करने में असुविधा महसूस कर रहा होगा, जिस कारण वह "मसीह में एक मनुष्य" (12:2) और "ऐसे मनुष्य" (12:3) की बात करना चुनता है। "ऐसा मनुष्य" स्वयं पौलुस ही है, जैसा कि 12:7 से स्पष्ट होता है। परन्तु पौलुस जानता है कि यह महान पल उसके अपने नहीं है। ऐसा कोई कारण नहीं था कि उसने कुछ किया हो कि वह "इस संसार से बाहर" के अनुभवों को याद कर सके। जैसा कि 10:17 में उसने कहा, "परन्तु जो घमण्ड करे, वह प्रभु पर घमण्ड करे।" पौलुस की मानसिक शक्ति या आत्मिक अनुभव के लिए उसकी विलक्षण क्षमता के कारण उसे "प्रभु के दर्शन और प्रकाशन" नहीं मिले थे बल्कि यह

तो मसीह के साथ उसका संबंध था। इस कारण इन सभी अनुभवों पर घमण्ड करने वाली कोई बात नहीं थी। पौलुस अपने जीवन के इन पलों का वर्णन इसलिए करता है क्योंकि दूसरों ने इस विषय को उठाया है। वह उन अनुभवों को "जिनका मुंह पर लाना मनुष्य को उचित नहीं" यह कहने के लिए मिलता है कि वह अपनी शिष्यता के प्रमाण के रूप में उन्हें नहीं देता है।

पौलुस ने कभी गहरे आत्मिक और भावनात्मक अनुभवों को नकारा नहीं। उसने हमेशा सुझाव दिया कि दूसरों के सामने अपने अनुभवों की प्रदर्शनी लगाना नहीं है। ऐसे अनुभवों की समीक्षा करना और तुलना करना अनुपयुक्त होगा। उसने कहा, "यदि हम बेसुध है, तो परमेश्वर के लिए...." (5:13)। कुछ पल उसके और परमेश्वर के बीच में थे, पूरे समाज के लिए नहीं थे। ऐसे ही एक संदर्भ में पौलुस ने कहा कि जब मसीह लोग अन्य भाषाओं में बात करते हैं, तो वे परमेश्वर से बात करते हैं (1 कुरिन्थियों 14:2)। चाहे वह अन्य भाषाओं में बात करता था पर यह उसके और परमेश्वर के बीच का मामला था (1 कुरिन्थियों 14:18)। पूरी कलीसिया के होने पर वह अपने आत्मिक अनुभवों के प्रदर्शन के बजाय पांच बातें जो समझ आने वाली हो बोलना पसंद करता था (1 कुरिन्थियों 14:19)।

पौलुस यह कहने को तैयार था कि "उठा लिए" जाने के असाधारण पलों का उसके जीवन में अपना स्थान था, परन्तु वह उन अनुभवों को अपनी प्रेरिताई के "प्रमाण" के रूप में देने को तैयार नहीं था। बिना शक उसके आलोचकों ने "असली प्रेरित के लक्षण" (12:12) होने का घमण्ड किया था। पौलुस उनके "लक्षणों" से मिलाने को तैयार था पर वह अपने दावों के प्रमाण के रूप में उन्हें नहीं देना चाहता था। वह कहता है, "ऐसे मनुष्य पर तो मैं घमण्ड करूंगा, परन्तु अपने पर अपनी निर्बलताओं को छोड़ अपने विषय में घमण्ड न करूंगा" (12:5)। वास्तव में "इस संसार के बाहर" के अनुभवों का प्रमाण गुमराह करता है। (12:6)। ऐसे दावे पेश करने वाले लोग या तो अपने आपको या दूसरों को भ्रमित करते हैं (11:13-15)। बहुत दावे पेश करने वाले लोग या तो अपने आपको या दूसरों को भ्रमित करते हैं (11:13-15)। बहुत से लोग उस अनुभव का दावा कर सकते हैं जो "इस संसार से बाहर" है। किसी के चेले होने के प्रमाण के हर दावे को स्वीकार कर लेना असंभव होगा।

हम मान सकते हैं कि जिसे "प्रकाशनों की बहुतायत" थी उसके पास बताने को और भी कई कहानियां होंगी। वास्तव में कई लोगों को हमें ऐसी कहानियों से बहलाना अच्छा लगता है। परन्तु पौलुस ऐसे घमण्ड करने से बचता है (12:6) क्योंकि वह इस प्रमाण से परखे जाने को चुनता है जो कुरिन्थियों के ध्यान में था (तुलना 10:7; 11:6)। पौलुस की प्रेरिताई का प्रमाण भावनात्मक अनुभव का चरम नहीं है, बल्कि वह रिकॉर्ड है जिसे वह पीछे छोड़ आया है। उसकी निर्बलता ने जो कड़ी आलोचना का विषय थी, उसे जीवनों को बदलने से रोका नहीं था। जहाँ सुसमाचार पर विश्वास किया जाता और कलीसिया स्थापित होती है वहाँ परमेश्वर काम कर रहा होता है। हमारे शिष्य होने की अंतिम परीक्षा वही है जिससे दूसरे लोग "देख और सुन सकते है" यानी

सेवा के वे कार्य जिनसे दूसरों के लिए हमारा लगाव दिखाई देता है, और दूसरों के लिए अपने आपका इंकार करने के रिकॉर्ड, वे समय जब कलीसिया के जीवन के लिए हमारी वचनबद्धता को दूसरे लोग देख सकते हैं जो लोग चरम अनुभवों के होने की बात पर जोर देते हैं वे अपनी ही भावनाओं से इतने आकर्षित हो सकते हैं कि वे दूसरों की आवश्यकताओं की अनदेखी कर दें।

पौलुस और उसके विरोधियों के चरम अनुभवों के विपरीत दावे इतने अद्‌भुत अनुभवों में भागीदारी की चुनौती देते हैं। तौभी हमारे सामने ऐसे सवाल खड़े होते हैं। हम "पहाड़ी की चोटी के अनुभवों" और "बहा लिए जाने" की बात करते हैं। हम पूछते हैं कि हमारे मसीही जीवन में भावनाओं का क्या स्थान है। कुछ लोग उस सारी आराधना को जो भावनाओं को आकर्षित करती है निराशा से देखते हैं। अन्य भावनाओं की परीक्षा के लिए सब धार्मिक अनुभवों को दे देते हैं और हमेशा करते हैं कि यह "इस संसार से बाहर" हो। इस प्रश्न के लिए पौलुस का उत्तर हमारे लिए उपयुक्त है। चरम अनुभव के लिए एक स्थान है परन्तु यह हमारी मसीहियत की अंतिम परीक्षा कभी नहीं रही। भावनाएं हमें भ्रमित कर सकती हैं। परन्तु एक बड़े हुए समय तक प्रेम पूर्वक कि गई सेवा पौलुस की परीक्षा हमें धोखा नहीं देगी।

जीवन और संघर्ष

एक आदमी को अपने बगीचे में टहलते हुए टहनी से लटकता हुआ तितली का कोकून दिखाई पड़ा। अब हर रोज वो आदमी उसे देखने लगा, और एक दिन उसने देखा कि उस कोकून में एक छोटा सा छेद बन गया है। उस दिन वो वहीं पर बैठ गया और घंटों उसे देखता रहा।

उसने देखा कि तितली उस खोल से बाहर निकलने की बहुत कोशिश कर रही है, पर बहुत देर तक प्रयास करने के बावजूद वो उस छेद से नहीं निकल पायी, और फिर वो बिलकुल खामोश हो गई। मानो उसने हार मान ली हो। इसलिए उस आदमी ने सोचा कि वो उस तितली की मदद करेगा। उसने एक कैंची ली और कोकून के मुंह को इतना बड़ा कर दिया कि वो तितली आसानी से बाहर निकल सके। तितली बिना किसी और संघर्ष के आसानी से बाहर निकल आई, पर उसका शरीर सूज गया था, और पंख सूखे हुए थे।

वो आदमी तितली को यह सोच कर देखता रहा कि वो किसी भी समय अपने पंख फैला कर उड़ने लगेगी। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इसके उलट बेचारी तितली कभी उड़ ही नहीं पाई और उसे अपनी बाकी की जिन्दगी इधर-उधर घिसटते हुए बितानी पड़ी। वो आदमी अपनी करूणा और उतावली में यह नहीं समझ पाया कि वास्तव में कोकून से निकलने की प्रक्रिया को परमेश्वर ने इतना कठिन इसलिए बनाया है ताकि ऐसा करने से तितली के शरीर में मौजूद तरल उसके पंखों में पहुंच सके और वो छेद से बाहर निकलते ही उड़ सके।

वास्तव में कई बार हमारे जीवन में संघर्ष की हमें सचमुच में आवश्यकता होती

है। यदि हम बिना संघर्ष के सब कुछ पाने लगे तो हम भी एक अपंग के जैसे हो जायेंगे। बिना परिश्रम और संघर्ष के हम कभी उतने मजबूत नहीं बन सकते जितनी हमारे अंदर क्षमता है।

इसलिए जीवन में आने वाले कठिन पलों को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखें। वे आपको कुछ ऐसा सबक दे जायंगे जो आपके जीवन की उड़ान को संभव बना दे।

मृत्यु क्या है?

पैरी बी. कॉथम

बाइबल की शिक्षानुसार, शारीरिक मृत्यु का अर्थ है आत्मा का देह से अलग होना। उस समय "मिट्टी ज्यों की त्यों मिट्टी में मिल जाएगी, और आत्मा परमेश्वर के पास जिस ने उसे दिया लौट जाएगी।" (सभोपदेशक 12:7)। देह क्योंकि मिट्टी से निकली है इसलिये वह मिट्टी में मिल जाएगी, जबकि आत्मा परमेश्वर के पास, जिसने उसे दिया, लौट जाएगी। (उत्पत्ति 3:19)। इसलिये याकूब ने लिखकर कहा था, कि "देह आत्मा बिना मरी हुई है।" (याकूब 2:26)। बाइबल यह नहीं कहती कि आत्मा देह के बिना मरी हुई है; किन्तु यह कहती है, कि देह आत्मा के बिना मरी हुई है। क्योंकि आत्मा कभी नहीं मरती।

मृत्यु के समय आत्मा देह से अलग हो जाती है। जब राहेल की मृत्यु हुई थी तो उसके प्राण (आत्मा) उसमें से निकल गए थे। (उत्पत्ति 35:18)। उस शोकपूर्ण घड़ी पर, आत्मा और देह एक दूसरे से अलग हो गए थे। मृत्यु को आत्मा या "प्राण का छूट जाना" कहकर भी सम्बोधित किया गया है। उदाहरणार्थ, मृत्यु के समय इब्राहीम का "प्राण छूट गया था।" (उत्पत्ति 25:8); जब यीशु क्रूस पर थे, तो उन्होंने कहा था, "हे पिता मैं अपनी आत्मा तेरे हाथों में सौंपता हूँ" फिर "यह कहकर प्राण छोड़ दिए।" (लूका 23:46) (देखिए उत्पत्ति 35:29, 49:33, प्रेरितों. 5:5, 10; 7:59, 60)। मृत्यु के समय आत्मा के प्रस्थान की तुलना एक चिड़िया के उड़कर चले जाने से करके बाइबल एक स्थान पर कहती है, "हम जाते रहते हैं।" (भजन. 90:10)। "हम" जो "जाते रहते हैं" का अभिप्राय देह से नहीं परन्तु आत्मा से है। इस प्रकार मृत्यु को इस संसार से आत्मा का प्रस्थान करना या निकलकर चले जाना कहकर दर्शाया गया है। रोम के एक बन्दिगृह से लिखकर, पौलुस मृत्यु को जीवन से कूच करके चले जाना कहता है, "क्योंकि मैं दोनों के बीच अधर में लटका हूं; जी तो चाहता है कि कूच करके मसीह के पास जाऊं, क्योंकि यह बहुत ही अच्छा है। परन्तु शरीर में रहना तुम्हारे कारण और भी आवश्यक है।" (फिलिप्पियों 1:23, 24; देखिए लूका 2:29; 9:31)। बाद में लिखकर एक अन्य स्थान पर उसने कहा था, "मेरे कूच का समय आ पहुंचा है।" (2 तीमुथियुस 4:6)। यहाँ जिस शब्द को "कूच" अनुवाद किया गया है वास्तविक यूनानी भाषा में उसका अर्थ है, उन रस्सियों को खोल देना जिन से समुद्र में जहाज़ बंधा हुआ होता है, या लंगर खींच लेना, और यात्रा पर निकल जाना।

मनुष्य की देह एक तम्बु या डेरे के समान है, जिसके भीतर वास्तविक मनुष्य रहता

है। इसलिये मृत्यु को डेरे का गिर जाना कहकर भी सम्बोधित किया गया है। (2 पतरस 1:13-15)। प्रेरित पौलुस ने एक जगह लिखकर कहा था, "क्योंकि हम जानते हैं, कि जब हमारा पृथ्वी पर का डेरा सरीखा घर गिराया जाएगा तो हमें परमेश्वर की ओर से स्वर्ग पर एक ऐसा भवन मिलेगा; जो हाथों से बना हुआ घर नहीं, परन्तु चिरस्थाई है।" (2 कुरिन्थियों 5:1)। उसने यह भी कहा था, "इस डेरे में रहते हुए" और "जब तक हम देह में रहते हैं" और यह कि "देह से अलग होकर" तथा "प्रभु के साथ रहना।" (पद 4-8)। इसलिये, मनुष्य के जीवित रहने का अर्थ है देह तथा आत्मा का एक साथ रहना; और जब आत्मा का सम्बंध देह से टूट जाता है तो उसे मृत्यु कहते हैं।

बाइबल में हम यह भी पढ़ते हैं, कि आश्चर्यक्रमों के द्वारा कुछ लोगों को फिर से जीवित कर दिया गया था। इसका साधारण सा अर्थ यही है कि उनकी आत्मा या प्राण ने फिर से उनके शरीर में प्रवेश कर लिया था। एलिय्याह ने प्रार्थना की थी कि सारपत की विधवा का लड़का फिर से जीवित हो जाए। "हे मेरे परमेश्वर यहोवा! इस बालक का प्राण इस में फिर डाल दे.... और बालक का प्राण उसमें फिर आ गया और वह जी उठा।" (1 राजा 17:21, 22)। आत्मा के उसकी देह से अलग हो जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी, परन्तु जब उसका प्राण उसमें (अर्थात् उसकी देह में) फिर से आ गया था, तो वह जी उठा था। जब प्रभु यीशु ने आराधनालय के सरदार की बेटी को जीवित किया था, "तब उसके प्राण लौट आए थे" (लूका 8:55; देखिए प्रेरितों. 9:36-41)। जब वह मरी थी तो उसके प्राण उसकी देह को छोड़कर चले गए थे; किन्तु फिर से जीवित होने के लिए उसके प्राण उसमें वापस आ गए थे। सो इस का अर्थ यह हुआ कि जितने समय तक वह मरी रही उसके प्राण जीवित तथा विद्यमान थे।

देह के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं हो जाता। पवित्रशास्त्र में लिखी बातों में कहीं पर भी ऐसा कोई कारण हमें नहीं मिलता जो इस बात की पुष्टि करता हो कि आत्मा, जो देह से बिल्कुल अलग व्यक्तित्व है, मृत्यु पश्चात् देह से अलग होकर नहीं रह सकती। आत्मिक व्यक्तित्व भौतिक देह के बिना विद्यमान रहता है; जैसे कि परमेश्वर तथा स्वर्गदूत हैं। (यूहन्ना 4:24; भजन. 104:4; लूका 24:39; इब्रानियों 1:14)। मनुष्य की आत्मा-जिसका सम्बंध पृथ्वी पर की किसी भी वस्तु से नहीं है, और न जिसकी सृष्टि पृथ्वी पर की किसी भी वस्तु से की गई है- वह शारीरिक देह के भीतर या बाहर दोनों जगह विद्यमान रह सकती है। वास्तव में, बाइबल इस बात की पुष्टि करती है, कि मृत्यु पश्चात् मनुष्य की आत्मा बनी रहती है। हम पुराने नियम के पूवर्जो के विषय में पढ़ते हैं, जैसे कि लिखा है, कि मृत्यु पश्चात् वे "अपने लोगों में जा मिले।" (देखिए: उत्पत्ति 25:8, 9, 17; 35:29; 49:33; गिनती 20:26; व्यवस्थाविवरण 32:50)। इसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है, अर्थात् वे वहाँ चले गए हैं जहाँ लोग इस जीवन के बाद विद्यमान थे; इसका अभिप्राय नाशमान देहों के एकत्रित होने से नहीं है, परन्तु आत्माओं के एक जगह इकट्ठे होने से है। दाऊद ने अपने मृत बालक के विषय में यह नहीं सोचा था, कि उसका अस्तित्व मिट चुका है, परन्तु यह समझा था, कि देह से अलग होकर वह एक अन्य स्थान पर विद्यमान है। सो इसलिये, उसने कहा था, "मैं तो उसके पास जाऊंगा परन्तु वह मेरे पास लौट न आएगा।" (2 शमूएल 12:23)। अर्थात् उसकी आशा थी कि इस जीवन को छोड़कर एक दिन वह उस बालक के पास चला जाएगा।

शारीरिक मृत्यु के बाद आत्मा के बने रहने की बात की पुष्टि प्रभु यीशु ने यह कहकर की थी, कि, "जो शरीर को घात करते हैं, पर आत्मा को घात नहीं कर सकते, उनसे मत डरना।" (मत्ती 10:28; देखिए लूका 12:4)। इसका अभिप्राय यह है कि जबकि देह तो मर जाती है परन्तु आत्मा नहीं मरती; इसके विपरीत, आत्मा, जिसे मनुष्य घात नहीं कर सकता, मृत्यु के बाद भी बनी रहती है। परन्तु यदि मनुष्य केवल मिट्टी तथा पशु-सरीखे जीवन के समान ही बना हुआ है, तो जो उसकी देह को घात करेगा वह उसी समय उसकी आत्मा को भी घात कर देगा।

मृत्यु के बाद मनुष्य के अस्तित्व के बने रहने की बात की पुष्टि प्रभु यीशु के उन शब्दों से भी होती है जो उन्होंने क्रूस पर चढ़े हुए विश्वासी डाकू से कहे थे, "कि आज ही तू मेरे साथ स्वर्गलोक में होगा।" (लूका 23:43)। इस बात का स्पष्ट अभिप्राय यह था, कि वह डाकू अपनी मृत्यु के बाद भी जीवित रहेगा। उस दिन जब यीशु मसीह की और उस डाकू की मृत्यु हुई थी, तो न तो मसीह की आत्मा का अन्त हुआ था और न उस डाकू की आत्मा का अन्त हुआ था।

इसके अतिरिक्त, मनुष्य की मृत्यु तथा पुनरुत्थान के बीच मनुष्य की आत्मा के व्यक्तिगत व्यक्तित्व के निरन्तर बने रहने की बात को प्रभु यीशु के रूपान्तर होने की घटना के विवरण में भी सिखाया गया है; जिसमें हम मूसा तथा एलिय्याह के प्रकट होने तथा यीशु से बातें करने के बारे में पढ़ते हैं। (मत्ती 17:1-8; लूका 9:28-36))। यीशु के रूपान्तर के समय, मूसा को मरे हुए लगभग पंद्रह सौ वर्ष हो चुके थे, और उसकी देह नबो पहाड़ पर किसी अज्ञात स्थान में दबी हुई थी। एलिय्याह को भी इस पृथ्वी से गए सैकड़ों वर्ष बीत चुके थे। तौभी मूसा तथा एलिय्याह, दोनों वहाँ उस समय उपस्थित थे!

नास्तिकवाद- जिसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता-उस मनुष्य को कुछ नहीं देता जो, जीवन के अंत में, एक अंधेरी कब्र और हमेशा के लिये मिट जाने के विषय में ही सोचता है। भौतिकवाद में विश्वास रखनेवाले लोग कहते हैं, कि मनुष्य पूर्ण रूप से नाशवान है और उसके भीतर आत्मा नाम की कोई चीज़ नहीं है; मरने का अर्थ है हमेशा के लिये पूर्ण-रूप से मिट जाना। वे कहते हैं कि मृतकों को "कोई एहसास नहीं है, वे मिट चुके हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं है, केवल परमेश्वर को उनका स्मरण है।" उनके मतानुसार, जब मनुष्य मरता है तो वह एक पशु के समान हमेशा के लिये मर जाता है। मृत्यु के पश्चात् वह एक पशु के समान हमेशा के लिये मिट जाता है।

कुछ लोग तर्क करके कहते हैं कि, सभोपदेशक 3:19, 20 के अनुसार, मनुष्य केवल एक पशु समान है, बिना एक ऐसी आत्मा के जो देह के विनाश के बाद विद्यमान रह सके। किन्तु वहाँ जो लिखा है, वास्तव में वह इस बात को दर्शाता है कि मनुष्यों तथा पशुओं की मृत्यु उनकी देह के दृष्टिकोण से एक समान है। दोनों मर जाते हैं और मिट्टी में मिल जाते हैं। परन्तु एक अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए तो दोनों में एक बहुत बड़ी असमानता है, अर्थात् मनुष्य के पास एक अमर आत्मा है, पशुओं के पास नहीं है। पशुओं की देह के समान मनुष्य की देह भी ज़मीनी है, और दोनों की ही मृत्यु निश्चित है। इसलिये उपरोक्त पदों में कही गई बात में तथा भजन. 146:4 में हमें एक ही सी बात मिलती है, जहाँ इस प्रकार लिखा है, "उसकी सब कल्पनाएं (या, "योजनाएं",

"मनसाएं", देखिए अय्यूब 17:11) नाश हो जाएंगी।" फिर, सभोपदेशक 12:7 में हम पढ़ते हैं, कि मृत्यु के समय मनुष्य की आत्मा परमेश्वर के पास वापस लौट जाती है।

जिस समय यीशु मसीह पृथ्वी पर थे, उस समय के सदूकी लोगों का विश्वास था कि मृत्यु का अर्थ है पूर्णत: मिट जाना। उनके निकट एक मरे हुए मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं था। वे भौतिकवादी थे, जिनका यह मत था कि देह के साथ आत्मा भी मर जाती है, इस कारण मृत्यु पश्चात् न तो कोई अस्तित्व रहता है और न पुनरुत्थान। वे आत्मा तथा स्वर्ग-दूतों की उपस्थिति का भी इंकार करते थे। (प्रेरितों. 23:8)।

एक बार कुछ सदूकी लोगों ने प्रभु यीशु के पास आकर उनके सामने एक बड़ी ही अटपटी सी बात रखी थी। उन्होंने कहा था, कि एक स्त्री थी जिस ने सात आदमियों से अलग-अलग समयों पर विवाह किया था। फिर वे सारे पुरूष मर गए थे और बाद में वह स्त्री भी मर गई थी। सो वे यीशु से पूछने लगे, कि पुनरुत्थान के दिन उनमें से कौन सा पुरुष उस स्त्री का पति ठहरेगा। यीशु ने उनसे कहा था, कि तुम्हें पुनरुत्थान तथा आनेवाले जीवन के विषय में सही ज्ञान नहीं है। यीशु ने कहा था, "कि तुम पवित्रशास्त्र और परमेश्वर की सामर्थ नहीं जानते; इस कारण भूल में पड़ गए हो क्योंकि जी उठने पर ब्याह-शादी न होगी; परन्तु वे स्वर्ग में परमेश्वर के दूतों के समान होंगे।" फिर यीशु ने मूसा के एक लेख से प्रमाण देकर उनसे कहा था, (जिसे वे स्वीकार करते थे), कि इब्राहीम, इसहाक और याकूब अब तक जीवित हैं, "परन्तु मरे हुओं के जी उठने के विषय में क्या तुमने यह वचन नहीं पढ़ा कि जो परमेश्वर ने तुम से कहा कि मैं इब्राहीम का परमेश्वर और इसहाक का परमेश्वर और याकूब का परमेश्वर हूं? (वर्तमान में)।" फिर यीशु ने कहा, "वह तो मरे हुओं का नहीं, (जैसा कि वे सोचते थे), परन्तु जीवतों का परमेश्वर है।" (मत्ती 22:29-32; देखिए मरकुस 12:18-27)। जिस समय इस बात को परमेश्वर ने वास्तव में मूसा से कहा था, (निर्गमन 3:6), इब्राहीम, इसहाक, और याकूब को मरे हुए कई पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं। किन्तु, वे उस समय भी वर्तमान थे, और वे अभी भी उसी प्रकार वर्तमान हैं; केवल उन लोगों की देह नाश हुई है। और यही बात उन सबके विषय में भी सच है जो अब तक मर चुके हैं। प्रभु यीशु का विशेष तर्क यहाँ यह है, कि वह तो "जीवतों का परमेश्वर है।" लूका अपने वर्णन में इसी बात को इस प्रकार कहता है, कि यीशु ने उनसे कहा था कि, "परमेश्वर तो मुर्दों का नहीं, परन्तु जीवतों का परमेश्वर है: क्योंकि उसके निकट तो सब जीवित हैं।" (लूका 20:38)। चाहे आत्मा देह के भीतर हो या बाहर, "उसके निकट सब जीवित हैं।" मसीह के इस उत्तर ने सदूकियों को हमेशा के लिए शांत कर दिया था।

भौतिकवादी लोग मृत्यु के उस सही अर्थ से परिचित नहीं हैं जो बाइबल में मिलता है; वे मृत्यु की परिभाषा "अस्तित्व का मिट जाना" कहकर देते हैं, परन्तु यह परिभाषा परमेश्वर की ओर से नहीं है। प्रभु के निकट मृत्यु का अर्थ है "अलग होना।" चाहे यह शब्द पवित्र-शास्त्र में वास्तविक रूप में या प्रतीकात्मक रूप में इस्तेमाल हुआ हो, किन्तु, मृत्यु का अर्थ हमेशा अलग होना ही है, मिट जाना नहीं है। बाइबल के अनुसार, मृत्यु तीन प्रकार की है: (1) **शारीरिक** - आत्मा तथा देह का अलग होना (याकूब 2:26; उत्पत्ति 35:18); (2) **आत्मिक** - आत्मा का परमेश्वर से अलग होना (इफिसियों 2:1; यूहन्ना 5:25; उत्पत्ति 2:17; यशायाह 59:1, 2; मत्ती 8:22;1 तीमुथियुस 5:6; 1 यूहन्ना

3:14); (3) **अनन्त**- परमेश्वर से अलग होकर हमेशा के लिये नरक में जाकर रहना। (प्रकाशित. 20:14, 15; 21:8; मत्ती 25:46; रोमियों 6:23; याकूब 5:19, 20; 2 थिस्सलुनीकियों 1:7-9; यहेजकेल 18:20)। पाप के कारण मनुष्य आत्मिक रूप से परमेश्वर से अलग हो जाता है, परन्तु आत्मा का अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता। (प्रकाशित. 14:11)।

जीवन को भी इसी प्रकार तीन तरह से देखा जा सकता है: (1) **शारीरिक** - (1 राजा. 17:21, 22; लूका 8:55); (2) **आत्मिक**- (यूहन्ना 11:25, 26; 8:51; 1 यूहन्ना 5:12); (3) **अनन्त** (मत्ती 25:46; तीतुस 1:2; 3:7; 1 यूहन्ना 2:25; प्रकाशित. 22:14)। अब अनन्त जीवन और अनन्त-अस्तित्व में भी अन्तर है। जीवन तथा मृत्यु अलग-अलग दो स्थितियां हैं जिनमें मनुष्य पाया जा सकता है, एक-साथ या अलग होकर। मृत्यु का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। सब मनुष्य अनन्त-काल तक बने रहेंगे-कुछ आनन्दित स्थिति में, पवित्र जीवन के कारण; और कुछ अधोलोक की पीड़ा में, पापमय जीवन के कारण। इसलिये कोई भी मनुष्य जबकि एक दृष्टिकोण से तो मरा हुआ हो सकता है, पर दूसरे दृष्टिकोण से वह जीवित हो सकता है। अर्थात् शारीरिक दृष्टिकोण से जीवित होते हुए भी वह आत्मिक दृष्टिकोण से मरा हुआ हो सकता है।

जो लोग आज कहते हैं कि मृत्यु के बाद मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है, वे उसी पुरानी धारणा को फिर से दोहरा रहे हैं जो सदूकियों की थी। किन्तु, सच्चाई यह है, कि वे जो शारीरिक रूप से मर चुके हैं, वे अभी भी जीवित हैं-अपने व्यक्तिगत व्यक्तित्व के साथ। यानि यह बात नहीं, कि "वे थे", परन्तु अभी भी "वे हैं।" मृतक अपनी देह से अलग होने पर भी अभी तक जीवित हैं। वे उस दिन की प्रतिक्षा में हैं जब उनकी देहों का पुनरुत्थान होगा।

परमेश्वर के वचन का अध्ययन कैसे करें

जैरी बेट्स

यदि कोई चाहता है कि वह परमेश्वर के ग्रहणयोग्य हो, तो यह आवश्यक है कि वह जाने कि परमेश्वर की इच्छा क्या है, उसकी हमसे क्या अपेक्षा है?

हमें जबकि बुद्धि प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये, ''यदि तुम में से किसी को बुद्धि की घटी है तो परमेश्वर से मांगे, जो बिना उलाहना दिये सब को उदारता से देता है, और उसको दी जाएगी।'' (याकूब 1:5)।

हम बगैर अध्ययन और साधना करें परमेश्वर के वचन को नहीं समझ सकते। प्रेरितों 17:11 में पौलुस ने बीरिया के मसीहों की सरहाना की जो प्रतिदिन पवित्र शास्त्रों में ढूंढते थे कि यह बातें यों ही है कि नहीं। आगे इसके अतिरिक्त उसने तीमुथि को भी प्रोत्साहित किया।

अपने आपको परमेश्वर का ग्रहणयोग्य और ऐसा काम करने वाला ठहराने का प्रयत्न कर जो लज्जित होने न पाए, और जो सत्य के वचन को ठीक रीति से काम

में लाता हो।'' (2 तिमुथियुस 2:15)।

केवल वचन का हवाला देना ही पर्याप्त नहीं है, आखिरकार शैतान भी वचन जानता है और उसका हवाला देता है, शैतान ने मसीह से कहा, ''यदि तू परमेश्वर का पुत्र है, तो अपने आप को नीचे गिरा दे; क्योंकि लिखा है : वह तेरे विषय में अपने स्वर्गदूतों को आज्ञ देगा, और वह तुझे हाथों हाथ उठा लेंगे, कहीं ऐसा न हो कि तेरे पांवों में पत्थर से ठेस लगे।'' (मत्ती 4:6), परन्तु शैतान ने वचन का गलत प्रयोग किया। बाइबल को सही रीति से समझने के लिये बुनियादी नियम क्या है?

पहला सही दृष्टिकोण का होना

यूहन्ना 7:17 में यीशु ने कहा, ''यदि कोई उसकी इच्छा पर चलना चाहे, तो वह इस उपदेश के विषय में जान जाएगा कि वह परमेश्वर की ओर से या मैं अपनी ओर से कहता हूं।'' (यूहन्ना 7:17)।

इस प्रकार परमेश्वर की इच्छाशक्ति को जानने की और उसे करने की एक तीव्र इच्छा का होना आवश्यक है, यदि हम परमेश्वर के वचन को सही रीति से समझना चाहते है। इसका स्पष्ट वर्णन यूहन्ना की पुस्तक उसके आठवें अध्याय में मिलता है जहां यीशु ने कहा कि कुछ अविश्वासी फरीसी उसकी शिक्षाओं को समझने में असमर्थ थे, क्योंकि उनकी अनुचित धारणा व गलत सोच और ह्रदय की कठोरता ने उनको अंधा कर दिया था।

दूसरा - बाईबल के दो मुख्य भागों का समझना : पुरानी वाचा और नई वाचा

इन दोनों पुरानी और नई वाचाओं के अन्तर को न समझने में कलीसिया के इतिहास में कई झूठे सिद्धांत देखने में आते है। परमेश्वर ने, इस्स्रालियों के साथ सीने पहाड़ पर एक वाचा बांधी, इसी को पुरानी वाचा कहते हैं और इसमें इस्राएलियों के साथ परमेश्वर के संबंधों का वर्णन है, जब तक कि मसीह इस धरती पर नहीं आए। जब मसीह ने क्रूस की मृत्यु सही उसके पश्चात पहली वाचा हटा दी गई और उसके स्थान पर एक दूसरी वाचा की स्थापना हुई, जो नई वाचा कहलाती है।

''और अपने शरीर में बैर अर्थात वह व्यवस्था जिसकी आज्ञाएं विधियों की रीति पर थी, मिटा दिया कि दोनों से अपने में एक नया मनुष्य उत्पन्न करके मेल कराये।'' (इफिसियों 2:15)।

''इसी कारण वह नई वाचा का मध्यस्थ है, ताकि उसकी मृत्यु के द्वारा जो पहली वाचा के समय के अपराधों में छुटकारा पाने के लिये हुई है; बुलाए हुए लोग प्रतिज्ञा के अनुसार अनंत भरोसे को प्राप्त करें। क्योंकि जहां वाचा बांधी गई है वहां वाचा बांधने वाले की मृत्यु का समझ लेना भी अवश्य है। क्योंकि ऐसी वाचा मरने पर पक्की होती है और जब तक वाचा बांधने वाला जीवित रहता है तब तक वाचा काम की नहीं होती।'' (इब्रानियों 9:15-17)।

यह नई वाचा पहली वाचा से अधिक अच्छी है क्योंकि इसमें पापों की क्षमा का प्रावधान है, जो कि पुरानी वाचा कभी न कर सकी।

''क्योंकि यह अनहोना है कि बैलो और बकरों का लहू पापों को दूर करें।'' (इब्रानियों 10:4)।

इस कारण पुरानी वाचा का अधिकार हमारे विश्वास और व्यवहार पर बिलकुल नहीं है। यद्यपि इसका योगदान हमें शिक्षा देने में बहुत महत्वपूर्ण है।

''जितनी बातें पहली से लिखी गई, वे हमारी ही शिक्षा के लिये लिखी गई है कि हम धीरज और पवित्रशस्त्र के प्रोत्साहन द्वारा आशा रखें।'' (रोमियों 15:4)।

बाइबल के किसी भी हल को समझने के लिये आवश्यक है कि उसके विषय को समझा जाए कि यह किस संदर्भ में कहा गया है।

संदर्भ में कई बातें शामिल हैं, जैसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–उस समय और उस स्थान में क्या घटना घटी, उसका साहित्यक और तत्कालीन विषय क्या था, जो इन आयतों का अध्ययन है जो उस परिछेद वाक्य खण्ड के पहले और बाद में लिखी गई। इस बात को भी समझना आवश्यक है कि किस प्रकार का साहित्य है। उदाहरण के तौर पर भजन संहिता एक कविताओं की पुस्तक है। कविताएं निराले और प्रतीकात्मक भाषा में लिखी जाती है, यानी साधारण अर्थ के स्थान पर एक अलावा प्रभाव डालने वाले शब्द प्रयोग किये जाते है। भजन संहिता 148:3 में भजन लिखने वाला सूर्य, चन्द्रमा और सितारों से कहता है कि परमेश्वर को स्तुति करो– यह प्रतिकात्मक भाषा है। क्योंकि बाइबल में कई प्रकार के साहित्य है इस कारण उसका उसी प्रकार से अनुवाद भी होना चाहिए।

जब एक विशेष बाधय खण्ड का अध्ययन किया जाए तो उसके संबंध में कई प्रश्न पूछने चाहिए।

कौन बोल रहा है, वह किससे बोल रहा है, और उस समय की स्थिति क्या है।

यीशु ने एक दफा एक धनी व्यक्ति से कहा था अपना सब कुछ बेचकर कंगालों को बांट दे (लूका 18:22)।

इस दृष्टांत से हर कोई यह निष्कर्ष निकालेगा कि जो यीशु के पीछे आना चाहता है उसे ऐसा करना होगा। यद्यपि जब हम यह विचार करते हैं कि यह शब्द एक ऐसे व्यक्ति से बोले गए जो परमेश्वर से ज्यादा भौतिक चीजों को पहला स्थान देता था, तो हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि ऐसा जरूरी नहीं है कि हमें अपना सब कुछ बेचना पड़ेगा पर हमें भौतिक चीजों के बाजाए परमेश्वर को प्रथम स्थान देना होगा; हर सांसारिक चीज से ज्याद हमें परमेश्वर से प्रेम करना होगा।

यह विचार करना आवश्यक है कि किस व्यवस्था के अन्तर्गत कौन सा हवाला लिखा गया था? यहूदियों के लिये विश्राम का दिन, मानना एक आज्ञा थी, जो सीने पहाड पर दी गई थी, परन्तु जिस व्यवस्था का यह भाग था उसे क्रूस पर कीलों से जड़ दिया गया था।

''और विधियों का वह लेख जो हमारे नाम पर और हमारे विरोध में था मिटा डाला और उसे क्रूस पर कीलों से जड़ कर सामने से हटा दिया है।'' (कुलुस्सियों 2:14)।

इस कारण आज यह मसीहों पर लागू नहीं है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि मसीह ने एक सच्चे यहूदी का जीवन बिताया जो इस बात को दर्शाता है कि वह विश्राम के दिन को मानता था।

एक विशेष सिद्धांत को समझने के लिये जितने भी इस विषय में संबंधित हवाले हैं उन पर विचार करना आवश्यक है। कभी भी कोई एक आयत किसी विशेष विषय की सच्चाई को नहीं समझा सकती इसलिये यह समझने के लिये कि किसी विषय पर परमेश्वर की पूरी शिक्षा क्या है, आवश्यक है कि बाइबल का अध्ययन पूरी रीति से किया जाए।

उदाहरण के तौर पर रोमियों 10:13 में लिखा है, ''जो कोई प्रभु का नाम लेगा, वह उद्धार पाएगा।''

इस हवाले को अलग से पढ़कर हम इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि केवल परमेश्वर का जुबानी नाम लेने से ही उद्धार प्राप्त हो सकता है पर इतना ही नहीं इसके साथ-साथ हमें दूसरों हवालों को भी पढ़ना होगा, जैसे प्रेरितों 2:38 और 22:16।

पतरस ने उनसे कहा, ''मन फिराओ और तुम में से हर एक अपने अपने पापों की क्षमा के लिये यीशु मसीह के नाम से बपतिस्मा ले, तो तुम पवित्र आत्मा का दान पाओगे।'' (प्रेरितों 2:38)।

''अब क्यों देर करता है? उठ, बपतिस्मा ले, और उसका नाम लेकर अपने पापों को धो डाल।'' (प्रेरितों 22:16)।

इसके अतिरिक्त बाइबल को समझने के लिये और भी बाहरी पुस्तकों की सहायता ली जा सकती है, कई प्रकार के बाइबल के अलग-अलग अनुवाद है जिनसे तुलना की जा सकती है (उदाहरण के तौर पर किंग्स जेमस बरजन, न्यू किंग जेमस वरजन, ए. एस. बी. या न्यू ए. एस. वी) यह एक हवाले को समझने में सहायक हो सकते है। कोई बात बाइबल के एक अनुवाद से समझ में न आए तो दूसरे अनुवादों से समझी जा सकती है। एक और सहायक औजार है, संपूर्ण कौन कौरडैन्स (स्ट्रौंगस संपूर्ण कौनकौरडैन्स और यंगस एनालिटिकला कौनकौरडैन्स) यह किसी विशेष शब्द से संबंधित बाइबल की सारी घटनाओं की सूची का उल्लेख करते हैं ताकि किसी विशेष शब्द, स्थान व्यक्ति या घटना का अध्ययन क्रमानुसार किया जा सके इससे किसी खास हवाले को भी जल्दी से निकाला जा सकता है।

एक समायिक (इस समय होने वाली बात से संबंधित) बाइबल में उन आयतों की तालिका मिलती है जो सामान्य विषयों से जैसे, ''अनुग्रह'', ''प्रेम'', आदि में संबंध रखती है, ताकि उस विषय के तमाम पहलुओं का अध्ययन किया जा सके।

बाइबल शब्दकोष या विश्वकोष बाइबल से संबंधित किसी हवाले, विशेष व्यक्ति या स्थान के बारे में समझाने में या किसी हवाले के पहले की घटनाओं उसकी पृष्ठभूमि की सूचना देने में बहुत उपयोगी साबित हो सकते है।

समीक्षाएं: किसी विशेष हवाले पर की गई टीका-टिप्पणी अत्यंत सहायक है, जिसको किसी विद्वान ने विस्तृत तौर से अध्ययन करके लिखा हो, पर यह ध्यान रहे कि वह विचार किसी से प्रेरित न हो, क्योंकि कुछ दृष्टिकोण गलत भी हो सकते है। इसके अतिरिक्त यह विचार कभी भी अपनी निजी खोज या पढ़ाई से प्रेरित नहीं होने चाहिए।

बाईबल अध्ययन पूरे जीवन की प्रक्रिया है और हर एक का यह प्रयास होना

चाहिए कि परमेश्वर की सामर्थ और ज्ञान में हमेशा बढ़ते रहे।

''और इसी कारण तुंम सब प्रकार का यत्न करके, अपने विश्वास पर सदगुण और सद्गुण पर समझ। और समझ पर संयम, और संयम पर धीरज और धीरज पर भक्ति और भक्ति पर भाईचारे की प्रीति और भाई चारे की प्रीति पर प्रेम बढ़ाते जाओ। क्योंकि यदि यह बातें तुम में वर्तमान रहे और बढ़ती जाएं तो तुम्हें हमारे प्रभु यीशु मसीह के पहचानने में निकम्मे और निष्फल न होने देगी। (2 पतरस 1:5-8)।

अनुवादक - भाई फैरल

आपका विवाह सफल हो सकता है - अपने साथी की आवश्यकताएं पूरा करने से

कॉय रोपर

विवाह होने पर आप एकाकी जीवन को त्याग देते हैं। आप अपना शेष जीवन दूसरे व्यक्ति के प्रति समर्पित करने का वचन लेते हैं। इसका अर्थ यह है कि आप उस व्यक्ति की भलाई की जिम्मेदारी को मान लेते हैं। विवाह का उद्देश्य केवल अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना ही नहीं है; इसका उद्देश्य अपने साथी की आवश्यकताओं को पूरा करना भी है।

वास्तव में, अपने साथी की आवश्यकताओं को पूरा करना प्रेम का सार है। यदि आप जब किसी से सचमुच वैसे ही प्रेम करते हैं जैसा प्रेम बाइबल में करने को कहा गया है, तो आपकी पहली दिलचस्पी उस व्यक्ति की भलाई होगी। जब आप अपने पति या पत्नी से मसीही प्रेम करते हैं तो आप उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने का हर संभव प्रयास करेंगे।

आपके साथी की कौन-सी आवश्यकताएं हैं?

शारीरिक आवश्यकताएं

स्पष्टतया आपके साथी की शारीरिक आवश्यकताएं भी हैं। आप दोनों को रोटी, कपड़ा और मकान चाहिए। नये नियम में पति को अपने परिवार की भौतिक आवश्यकताएं पूरी करने की खास जिम्मेदारी को पूरी गंभीरता से लेना चाहिए। (1 तीमुथियुस 5:8)। इसे सुस्ती से नहीं लेना चाहिए, जान-बूझकर काम को टालने वाला या कोई काम करने में असमर्थ न हो। कई बार उसे परिवार की भलाई के लिए अपने सपनों को पूरा करने का काम टालना पड़ता है। पत्नी को घर को चलाने की जिम्मेदारी दी गई है (1 तीमुथियुस 5:14; तीतुस 2:5), घर को व्यवस्थित रखने की कि इस तरह परिवार की भौतिक और भावनात्मक आवश्यकताओं में वह अपना योगदान दे सकती है। इसके साथ ही हर एक को दूसरे के स्वास्थ्य की चिंता होनी चाहिए। पत्नी की बीमारी के प्रति पति को वैसे ही चिंता करनी चाहिए जैसे वह अपनी बीमारी की करता है। दोनों को एक-दूसरे की देखभाल करनी चाहिए।

विवाह के बाद भौतिक आवश्यकताओं में शारीरिक आवश्यकता भी शामिल है,

जिसे पूरा किया जाना चाहिए। विवाह में दोनों को एक-दूसरे की शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए (1 कुरिन्थियों 7:3-5)।

सामाजिक आवश्यकताएं

इसके साथ ही हर विवाहित साथी की अपनी सामाजिक आवश्यकताएं भी होती है। जिन्हें दूसरा साथी पूरा करने में सहायता कर सकता है। हर एक को साथी और मित्र की आवश्यकता होती है- समाज का एक भाग बनने की, जिसमें आपके साथियों के साथ मिलकर एक-दूसरे की सहायता की जाए और एक-दूसरे को उत्साहित किया जाए।

बेशक, पति-पत्नी को एक-दूसरे के सच्चे मित्र और नजदीकी साथी होना चाहिए। परमेश्वर ने स्त्री को इसलिए बनाया कि पुरुष अकेला न रहे, तथापि पति की दोस्ती पत्नी की हर सामाजिक आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकती। एक स्त्री अपनी सहेलियों की आवश्यकता को पूरा कर सकती है; पुरुष कभी-कभार पुरुषों की मण्डली में बैठना पसंद करता है- मछली पकड़ने या शिकार करने के लिए, एथलेटिक खेलों का आनन्द लेने के लिए या किसी विषय पर चर्चा करने के लिए। पति-पत्नी को एक-दूसरे की आवश्यकताओं को समझना चाहिए और अपने आप को ठुकराया हुआ महसूस न करे। यदि आपका साथी अपने साथियों के साथ कुछ समय बिताना चाहता है। पति/पत्नी को एक-दूसरे को अपनी सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। बेशक पति-पत्नी के बीच दोस्तों का झुण्ड कभी नहीं आना चाहिए।

भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं

इसके अतिरिक्त पति-पत्नी को एक-दूसरे की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करने की चिंता करनी चाहिए।

आवश्यकताएं जो पुरुष और स्त्री दोनों की होती हैं यानि पुरुष और स्त्री की मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक आवश्यकताएं एक सी होती हैं, पर हो सकता है कि उन की पूर्ति एक ही तरह से न हो। दोनों के मन में प्रेम किए जाने, सराहे जाने और महत्व दिए जाने की भावना होती है। दोनों को यह मानते हुए कि वे अपने समाज और परिवार में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं अपने आप को उपयोगी और योग्य समझना आवश्यक है। सब लोग अपनी क्षमता से कुछ प्राप्त करना और यह जानना चाहते हैं कि उनके जीवनों का कुछ अर्थ है। पुरुष और स्त्री दोनों किसी संस्था जैसे परिवार, कलीसिया, श्रम संगठन, जन या राजनैतिक दल या किसी राष्ट्रीय दल के महत्वपूर्ण सदस्य बनना चाहते हैं जो समाज में उनकी पहचान बनाने में सहायक हो। थोड़ी बहुत हर किसी में अपने साथियों की सहमति, और अपने भविष्य की सुरक्षा की चाहत होती ही है।

पुरुष और स्त्री में चाहे भिन्नताएं हैं, पर पति और पत्नी में से दोनों को एक दूसरे की भावनाओं को समझना चाहिए। अपने आपको अपने साथी की जगह रख कर देखें। पूछें, "मेरे पति या मेरी पत्नी को यह कैसा लगेगा?"

उदाहरणतया, पुरुष अपनी कद्र अपने काम से ही आंकता है, यानी अगर पुरुष का काम असफल हो जाता है या यदि उसकी नौकरी चली जाती है, तो वह निराश

हो जाता है, और अपने को नकारा समझने लगता है। (तब उसे साथ रहना अप्रिय लग सकता है)। ऐसे में उसकी पत्नी को उसे प्रोत्साहित करना और उसकी भावनाओं को समझना आवश्यक है।

दूसरी ओर बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो स्त्री को अपना "घोंसला खाली खाली" लगने लगता है। उसके पति को उसकी जरूरतों को समझते हुए उन्हें पूरा करने की कोशिश करनी आवश्यक है। पति को अपनी पत्नी को बताना आवश्यक है कि जो काम वह अब कर रही है वह प्रशंसनीय है और उसकी महत्वता को समझने में उसकी सहायता करनी चाहिए।

विशेषकर पति को अपनी पत्नी की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। आमतौर पर पति अपनी पत्नियों की भावनाओं से अनभिज्ञ ही होते हैं। पुरुषों की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह तथ्य के बारे में सोचते हैं और अपनी पत्नियों की भावनाओं को तिरस्कार की नजर से देखते है। पुरुषों को यह समझने की आवश्यकता है कि भावनाएं ही सच्चाई/तथ्य है। तथ्य चाहे कुछ भी हों, यह सच है कि पत्नियों के सोचने का ढंग अलग ही होता है। उसकी भावनाएं उसकी खुशी और उसके विवाहित जीवन की खुशी के लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं, उससे भी बढ़कर जिसे वह सच्चाई मानता है। एक मसीही पति के लिए चाहे यह काम कितना मुश्किल क्यों न हो उसे अपनी पत्नी की भावनाओं का उत्तर देना सीखना होगा। जहां तक हो सके, पति को चाहिए कि वह कुछ भी करके अपनी पत्नी को खुश रखे, उसी तरह पत्नी को भी अपने पति को खुश रहने में सहायता करनी चाहिए।

पुरुषों और स्त्रियों की विशेष आवश्यकताएं

पति और पत्नी दोनों की कुछ अतिरिक्त आवश्यकताएं होती हैं, जिन्हें वे पूरी कर सकते है। क्रिश्चियन कॉलेज के प्रेसीडेंट ने ध्यान दिलाया कि स्त्रियां और किसी भी बात से अधिक प्रेम की इच्छुक होती है; और पुरुष सब बातों से बढ़कर सम्मान को महत्व देते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि बाइबल इन मुख्य आवश्यकताओं को तृप्ति प्रदान करती है। पति को अपनी पत्नी को क्या देना चाहिए? प्रेम, इफिसियों 5:25 कहता है, "हे पतियो, अपनी-अपनी पत्नियों से प्रेम रखो, जैसा मसीह ने भी कलीसिया से प्रेम करके अपने आपको उसके लिए दे दिया है।" पत्नियों को अपने पतियों को क्या देने की आवश्यकता है? अधीनता, या इज्जत! (देखें इफिसियों 5:22-24)। दूसरे शब्दों में यदि पति-पत्नी का व्यवहार एक-दूसरे के प्रति बिल्कुल वैसा है जैसा बाइबल में सिखाया गया है तो वह एक-दूसरे की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता को पूरा कर रहे हैं।

स्त्री की प्रेम की आवश्यकता पुरुष को अपनी स्त्री से निःस्वार्थ प्रेम करना चाहिए जो उसके लिए हमेशा अच्छाई की खोज में रहता हो। बेशक, पति के लिए जितना आवश्यक उससे प्रेम करना है, उतना ही अपने कामों और बातों के द्वारा प्रेम दिखाना भी है। पत्नी प्रेम की इच्छुक ही नहीं होती, वह उस प्रेम को अनुभव भी करना चाहती है।

पुरुष को सम्मान की आवश्यकता होती है इसलिये स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति का आदर करे। पुरुष भी प्रेम का अनुभव करना चाहता है, पर किसी भी और बात से बढ़कर उसे यह पता होना आवश्यक है कि वह एक पुरुष है और उसे आदर और

सम्मान मिलता है। पत्नी उसे पुरुष बने रहने देकर इस आवश्यकता को पूरा कर सकती है- बल्कि पत्नी उससे विवाह होने के कारण अपना "मर्दों वाला" रौब त्याग देने को विवश न करके, स्वेच्छा से घर में पति की अुगआई को मानकर उसको आदर दे सकती है। इसके अलावा पत्नी घर में उसकी अगुआई को मानने के लिए अपनी इच्छा जताने का संकेत देकर अपने पति का आदर कर सकती है। जैसे पति अपनी पत्नी की प्रेम की आवश्यकता को पूरा करके लाभ प्राप्त कर सकता है, वैसे ही स्त्री भी देखेगी कि यदि वह अपने पति का आदर करती है और उसे प्रेम देतीहै तो पति भी बड़ी उदारता से उसे ग्रहण करेगा।

आत्मिक आवश्यकताएं

इसके अलावा पति-पत्नी की आत्मिक आवश्यकताएं भी होती हैं, जिन्हें पूरा करने में वे एक-दूसरे की सहायता कर सकते हैं। बेशक किसी भी बात से बढ़कर उन्हें उद्धार पाने, अपने पापों की क्षमा पाकर, स्वर्ग में जाने की आवश्यकता है। स्वर्ग में जाने के लिए उन्हें कलीसिया के सक्रिय सदस्य होना आवश्यक है। कलीसिया में उन्हें सदस्य बनने की समझ आती है। एक पहचान मिलती है कि वे किसी अच्छे काम में शामिल हैं।

पति-पत्नी को चाहिए कि वे आत्मिक रूप में एक-दूसरे की उन्नति करें। यदि दोनों में से एक जन मसीही नहीं है, तो पति या पत्नी दोनों में से जो भी मसीही हो उसकी सबसे बड़ी उम्मीद और लक्ष्य सही हो कि उसके साथी का मनपरिवर्तन हो जाए। इसके लिए मसीही साथी हर संभव प्रयास करेगा और प्रार्थना करेगा। यदि पति-पत्नी दोनों मसीही हो तो दोनों एक-दूसरे को प्रोत्साहित करेंगे कि वे "डटे रहे।" दोनों प्रेम से, धैर्य से क्षमा करते हुए एक-दूसरे में मसीही गुणों को बढ़ाने में सहायता करेंगे। दोनों एक-दूसरे को प्रोत्साहित करेंगे कि वे अपने गुणों का इस्तेमाल परमेश्वर के लिए करें। सिखाने का हो या प्रचार करने का, या पुस्तकें संभालने, दन्त चिकित्सा, बढ़ई का काम, बागवानी जैसे कामों के अपने गुणों से परमेश्वर की बड़ाई करे। वह ऐल्डर और डीकन के गुणों को बढ़ाने में उसकी सहायता कर सकती है। वह अतिथी सत्कार करने वाली बनने में उसकी सहायता कर सकता है और उसे प्रोत्साहित कर सकता है कि वह अधिक से अधिक लोगों को अपने घर बुलाए। वह उसे बाइबल क्लास में पढ़ाने के लिए प्रेरित कर सकता है, युवा स्त्रियों को अच्छी शिक्षा देकर या घर की देखभाल में हो, हस्तकला में, पढ़ाई लिखाई में, अपने गुणों को चाहे इनसे वह प्रभु के राज्य में अपना योगदान दे, उसकी सहायता कर सकता है।

यदि पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे की आत्मिक आवश्यकता को पूरा करने में सफल हो जाते हैं तो इनमें न केवल यहां ही भरा-पूरा खुशहाल जीवन मिलेगा, बल्कि इसके बाद स्वर्ग में भी एक घर मिलेगा। वे सबसे बड़ी पारिवारिक पुनर्मिलन अर्थात् हर युग के पवित्र लोगों के एक-दूसरे और अपने स्वर्गीय पिता के साथ पुनर्मिलन में अपने स्वागत किए जाने की राह देख सकते हैं।